आशीर्वाद से बचो



विनोद गोदरे



क्रमशः प्रकाशन, ३६।९८४ नेहरू नगर, कुर्ला (पूर्व) बम्बई–२४

मूल्य : पाँच रुपए

स्वत्वाधिकार : विनोद गोदरे

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९७४

प्रकाशक : क्रमश प्रकाशन, द्वारा ३६/९८४ नेहरू नगर, कुर्ला (पूर्व) बम्बई–२४

आवरण : जी. एम. सोलेगांवकर

मुद्रक : विद्यापीठ प्रेस, उद्योग मन्दिर, पीताम्बर लेन, माहीम–४०००१६

समर्पित

उन सभी को
जो इन कविताओं के लिखे जाने के लिए
जिम्मेदार हैं ।

खण्ड : एक

विद्रोह हमको कितना छलता है

१– आशीर्वाद से बचो १
२– पुल २
३– दर्शन दर्द का ३
४– बागी की क्षमायाचना ५
५– कवि की द्विविधा ८
६– प्रतीक्षा सम्पूर्ण अनावरण की ९
७– आकाश छूने के लिए ११
८– नही मही...... १३
९– हँसी १५
१०– राष्ट्रीय पशु १५
११– बावजूद इसके १६
१२– गोष्ठी १८
१३– अस्तित्ववादी १८
१४– बंगला देश : दो मन स्थितियाँ १९
१५– काठ का योद्धा २०
१६– कायाकल्प २२
१७– किस्सा है तुम्हारे याद आने का २३
१८– चुनाव का स्वागत २५
१९– चंद टूटे शेर २६
२०– एक दुमदार कविता २६
२१– अवातर कथा २७
२२– ऊमी २९
२३– स्वाभिमान की घास ३१
२४– शीघ्रता करो ३३
२५– इतना तो करो ३५
२६– एकेडेमिक रोमांस ३७
२७– लिवनर के बाद ३८
२८– क्रांति का कबूतर ३९
२९– सरेआम दुम हिलाते हुए ४२
३०– बुसौवल ४४

३१– मैं हिन्दी के मोर्चे पर हार गया हूँ ४५
३२– अपने से बातचीत ४६
३३– कुर्सी ४८
३४– कुर्सी ४८
३५– रचना के पांव ४९
३६– इतिहास : नव बोध ५०
३७– कल सूर्योदय के साथ ५१
३८– खतरे की तख्ती ५४
३९– इतिहास के अंधेरे में ५५
४०– पता नही ५८
४१– साहित्यिक मसीहा का आत्मकथन ५९
४२– अहम् की बांसुरी ६१
४३– हड़ताल ६१
४४– सस्कारोत्सव ६२

खण्ड : दो
खबरदार कवितायें

४५– इक्कीस खबरदार कविताएं ६३ से ७२

खण्ड : तीन
जब वेणी में गूँथ दिये थे जीवन के सारे अध्याय

४६– अगला पृष्ठ ७५
४७– आज भी ७६
४८– निपट अकेले ७८
४९– बरसों बाद ८०
५०– निष्फल प्रणय ८०
५१– प्रदन क्षण ८१
५२– और आज ८२
५३– स्मृति ८४
५४– पूजा ८४
५५– एक सांस : पूर्ण-सेस ८५
५६– कौन ८६
५७– केवल तुम्हें ८८
५८– अभ्यास ९२
५९– अभिसार ९२

खण्ड–एक

विद्रोह हमको कितना छलता है !

इन रचनाओं के लिए किसी स्वतन्त्र भूमिका की जरूरत—कविताओं से हटकर मैं महसूस नहीं करता। सीधे साक्षात्कार के लिए कविताएं प्रस्तुत है।

आशीर्वाद से बचो !

बरसात से नहीं, आशीर्वाद से बचो
बरसात को रोक लोगे छाते से
पर आशीर्वाद
तुम्हारी आत्मा तक को छलनी कर
जायेगा ।
वर्षा संपन्न करती है
देकर संघर्ष के बीजांकुर
पर, तुम्हारे आराध्य देंगे तुम्हें
दमघोंट उदासी
कुंठाओं के अनगिनत कैक्टस
उगायेंगे रोज़ दिमाग में दंशों की
नागफनी
ताकि नित लहूलुहान रहो ।
ये तुम्हारी मेधा को करेंगे
रखैल की तरह इस्तेमाल
और अपनी बांझ प्रतिभा को
पूतों फली नार बतलायेंगे ।
ये तुम्हें कभी नहीं दिखलाएंगे
कोई दरवाजा या खिड़की की राह
कि जहां पहुंच तुम भी पा सको इस
तिलस्मी घुटन से सदा को
छुटकारा ।
पर, यदि पा ही गए तुम कोई खिड़की
खुद ही अंधेरे में टटोलते, या
पहुंच ही गये किसी दरवाजे तक

यहाँ वहाँ भटकते ।
ये तुमपर बदचलनी का इलजाम
लगाएंगे
और कील देंगे तुम्हें बदनामी के
ताबूत में जिंदा ।
अतएव अपने अस्तित्व के लिए
खुद सूझो बूझो मरो
मगर अहर्निश इनकी कृतज्ञता की
पूजा करो ।
और लगा लो तुम इनके मठ का
तिलक चुपचाप या
चिपका लो कमीज की जेब पर
इनकी ही नेमप्लेट या जंग लगा तमगा ।
दोस्तो, मुक्ति का मार्ग आशीर्वाद से
गुजरता है ।
अथवा, बचने से इनके प्रतसिद्ध
आशीर्वाद से
तुम कर सकते हो एक काम और भी—
कि
आशीर्वाद की सड़ांधती इस बेशर्म
नंगई
परंपरा को चिथड़े-चिथड़े कर
हवा में उड़ा दो
तोड़ दो अपने भीतर की
श्रद्धा के सारे दुर्ग-किले
कर दो ध्वस्त सद्भावना के
सारे शब्दकोश
और होकर पूरे औघड़,कबीर
बरसात के इस मौसम में
निर्वस्त्र नहा लो ।
मित्रो, निरावरण रहने से बड़ा
कोई आशीर्वाद नहीं होता है
अनावृत्त रहने से बड़ा
कोई मोक्ष नही होता है ।

पुल

हम सब पुल हैं
एक दूसरे को पुल बनाते हैं
और चढ़ जाने के बाद
थपकी देने के बजाय
यार को धक्का दे देते हैं—
डरते हैं कहीं वह
हमें पुल न बना ले ।

दर्शन दर्द का

चोट जो मैंने सही
तुमने सही होती
घाव जो मैंने सहे
तुमने सहे होते
दोस्त, तब तुम भूल जाते
दर्द का दर्शन
जन्म लेता दर्द जो कहवाघरों में
पनपता काफीघरों में
और जाता मर कहीं
कविता बना ।

बागी की क्षमा याचना

मैं उन सबकी ओर से
जिन्होंने अपनी आत्माएं बेच दी हैं
जिन्होंने अपने भविष्य को दूसरों के
हाथों सौंप दिया है, मैं उन सबकी ओर से
अपने आप से क्षमा मांगता हूँ ।

ये उन लोगों की ओर से क्षमा याचना है
जो अन्यों के हाथों के कठपुतले बन गये हैं
जिन्होंने कभी अपने मस्तिष्क से समझौता
करने का प्रयत्न नहीं किया
जिन्होंने अपने स्वतंत्र अस्तित्व में
कभी विश्वास नहीं किया
जिन्हे शंकाओं की विषैली नागिनों ने
रह-रह कर डँसा किया है
जिन्होंने इस शरीर की चेतना का गर्भपात कर
इसे मात्र हड्डी और मांस का लोथड़ा भर समझा है ।
ये भूल ही गए कि—
इन सांसों में ज्वालामुखी पला करते हैं
इन रगों की रगड़ से बिजलियाँ डरा करती हैं
इन आंखों में वासंती सपनों के साथ कभी
प्रलय की सर्वनाशी भट्टियाँ भी सुलग सकती हैं,
ये यह भूल ही गए ।

ये उनकी ओर से क्षमा याचना है—
जिन्होंने कभी अपने आप को जानने तक की कोशिश नहीं की
जिन्होंने कभी सिर उठाकर नहीं देखा कि

ऊपर कोई आकाश नाम की भी चीज है।
जो सदा पिसते रहे हैं, दवते रहे है किन्तु
जिन्होंने कभी मुंह खोलने की गुस्ताखी नही की
अधरों को गीला कर जिनकी जिह्वा
सिर्फ दाँतों के कटघरे में बद रहती आई है
जिन्होंने कभी यह न जाना कि जीभ
स्वाद लेने के अलावा कुछ और भी काम करती है
कि जिसकी एक अंगड़ाई से सृष्टि पलट सकती है

काश कभी उन्होंने इस सत्य को जाना होता कि
जिन्दगी लकीर की फकीर नही है
शतरंज की प्यादा या वजीर नही है
और मुझे इस जुर्म में गिरफ्तार किया गया
क्योंकि मैंने यह कहा कि—नही जिन्दगी
प्यादे की तरह गुलाम नही है
आओ, हम इसे अपनी भावनाओं का
अनमोल ताज पहनाएं।

मैंने जिन्दगी को संकीर्ण दायरे में नही बाँधा
मैंने सिर उठा कर ऊपर देखने का भी कसूर किया है
मैंने सिर उठा कर देखा कि—
इस जिन्दगी के ऊपर एक वड़ी भारी छत भी है
और मुझे उस शून्य में
दूर से आती हुई एक झिलमिलाती छनती हुई
रोशनी दिखाई पड़ी
मैंने उस रोशनी से प्यार करने की कोशिश की
ताकि वह रोशनी, आजाद आकाश की शहजादी
मेरे व्यक्तित्व का वातायन बन सके।

उस ऊँचे छतनुमा आकाश में मुझे गीत सुनाई पड़ा
जिन्हें धरती के पक्षियों ने ही गाया था
तब मुझे इस बात की प्रतीति हुई कि
मेरी जिह्वा सिर्फ स्वाद लेने की कल नही है
वह भी इन पक्षियों की तरह वोल सकती है

अतः मैं चिल्लाया क्योंकि मैं
मानवीय सभ्यता के विकास का अगला पत्थर रखना चाहता था
पर मेरी चिल्लाहट जो चेतना के अमृत मे भीगी हुई थी,
जो जागरण की प्रभाती की अगवानी थी, लोगों ने
उसे केवल एक पागल का प्रलाप समझा ।
मैंने नही बनना चाहा था—नीत्शे
भरी दोपहर मे जला कर लालटेन ।

बस मुझसे यही अपराध हुआ कि मैंने
अपने आप को समाज के, देश के काले नक्शों मे
आज की सभ्यता की बदबूदार कोठरी मे
बंदी नही बनने दिया और बगावत की ।
उस परम्परा का मैंने विरोध किया कि जिसमे
सिर तक उठाने की मनाई थी ।
मैंने सिर उठाकर अबतक दृष्टिपथ से अज्ञात रहनेवाला
खुला आकाश देखा ।
घोड़े की तरह सिर्फ औरों की आज्ञा को
सुनने के आदी कानो मे, मैंने स्वतन्त्रता का
स्वर्गिक गान सुना और तृप्त हुआ ।
मुझे इसमे आनन्द मिला था, रस मिला था
अतः मैंने भी आनद के गीत गाने शुरू किए
लोगों को अपने लोकोत्तर अनुभव बतलाने शुरू किए
किन्तु लोगों ने इसे मेरा पागलपन समझा,
इसे अपराध समझा गया ।
और, आज मैं खड़ा किया गया हू क्षमा याचना के लिए
उनके सम्मुख—
जिन्होने वह कुछ भी नही देखा जो मैंने देखा है
जिन्होंने दीपक की लौ में पलते ज्वार को नही देखा
मात्र उसकी रोशनी से अपना घर रोशन करते रहे ।
जिन्होंने कभी अपना सिर उठाकर ऊपर देखने की गलती
नही की
जिन्होंने कभी अपने व्यक्तित्व की सुगन्ध से
सुवासित होने का कष्ट नही लिया ।

पर मुझे क्षमा माँगनी ही पड़ेगी उनसे
जिन्होंने पीढ़ियों की पीठिका पर बैठ
कभी सूरज की रोशनी के बदलते रंगों को
देखने का, पढ़ने का प्रयास नहीं किया
मात्र अपने पुरातन जीर्ण दिए को
सूरज से महान सिद्ध करते आए ।

और क्षमा मांगनी ही पड़ेगी
अपनी आत्मा पर शिला रखकर
सत्य की शोध का गला घोट कर
मुझे अतीत के इन जीवन्त भूतों से
क्षमा-याचना करनी ही पड़ेगी ।
अत. इस आत्म प्रवंचना के पूर्व
मैं अपने आप से क्षमा मांग लू
और उनसे क्षमा मांग लू
जिन्होंने मुझे मुक्त संगीत का आनन्द दिया
जिन्होंने मेरे ज्ञान क्षितिज को विस्तृत किया ।

हे आकाश, हे सूर्य, हे प्रकृति के उन्मुक्त गायको !
मुझे क्षमा करना, मैंने तुम्हारी रोशनी चुराने का
तुम्हारा गीत गुनगुनाने का जघन्य अपराध किया है
और इस पाप की, अपराध की जघन्यता उन्हे
देकर और भी बढ़ा ली
जिन्होंने इस अनमोल रतन को
अपनी जंग लगी कसौटी पर कस कर
इसे निरा कांच का टुकड़ा करार कर दिया,
मुझे क्षमा करो, मुझे क्षमा करो ।

कवि की द्विविधा

छोड़ दो कुदाल, फावड़ा हल
देख लिया इनका फल
फेफड़े मे टी. बी. नाराज बीवी
बच्चे छी छी ।
तोड दो झोपड़ा
यह लो हथौड़ा
बिना संपूर्ण तोड़े नया नहीं बनता है
केवल आदमी टूट जाता है
उसका भाग फूट जाता है ।
हँस हँसकर तोड़ो
लड लड़कर जोड़ो
यह लो बंदूक
तोड़ो सदूक
सोचे मलूक !
सोचे से क्रांति नही आती है
चिन्तन के गर्भ से लेता है जन्म, बुद्धिजीवी
कोई, वैसे नपुसक, कविता मे हिंसक ।
जन जीवन को नहीं जगाता है
क्रांति से अल्मारी सजाता है
करता है आह्वान भाषा में ऐसी कि
हिन्दी भी लिखता तो अंग्रेजी लगती है
जनता के नाम पर जनता को ठगती है
यही सोचकर हम द्विविधा मे पड़े हैं
जमीन में लज्जा से गहरे गडे है
लिखने को लिख दीं कविताएं जुझारू
पर दफ्तर में सेठजी के हाथ जोडे खड़े हैं !

प्रतीक्षा सम्पूर्ण अनावरण की

हे राम, हरे कृष्ण,
यदि तुम न लेते अवतार
न करते 'जब जब होंहि धरम की हानी'
से 'संभवामि युगे युगे' तक का मारक उच्चार
तो शायद हम नहीं होते आज
इतने निहत्थे और लाचार।
तुम तो वामनावतार के बाद भी
कहलाए विराट
मगर हमें बौनों की पांत में खपना पड़ता है रोज
सोचो तो प्रभु
यदि तुम्हारे आभा मण्डल को
चीर दिया जाए
या उधेड़ दी जाए तुम्हारी
दर्पोक्तियों की झालरदार सीवन
तब तुम कैसे नजर आओगे—
बिलकुल नंगधड़ंग अथवा किस्सा मनगढ़ंत।
तुम तो शंख बजाकर बैठ गए
लड़ना पड़ा है महाभारत हमें रोज रोज
तुम्हें क्या
बहुत हुआ तो मार दिया
एकाध रावण या गिरा दी किसी
कंस की लाश
जय जय रणछोड़दास !
पाकर तुम्हारा ही अर्जुनी आश्वासन
करते रहे हम तुम्हारा कीर्तन
प्रतिक्षण प्रतिपल निश्छल।

पर जब
भूख प्यास शोषण और दमन से
विक्षुब्ध बनी आस्थाहतों की जमात
पूछती है जलता प्रश्न, बता
कहां गए तेरे धनुर्धर राम
शंखधर श्याम
दीखता नहीं क्या उन्हें
हम पर गुजरता अन्याय
होता शोषण असहाय ।
तब
तुम पर किए गए ओछे
प्रहारों से
शरीर केवल फड़ककर रह जाता है
न तो कर पाता हूँ प्रतिरोध उनका
और न कर पाता हूँ उनसे मीठा अनुरोध
शांत रहने का, सहिष्णु बनने का ।
और न लड़ पाता हूँ भूख प्यास शोषण के खिलाफ
कोई गुरिल्ला युद्ध
न छेड़ पाता हूँ अपमान और अत्याचार के
विरुद्ध कोई कातिलाना जेहाद ।
क्या करूं कान्ह !
जीवन की सारी मिठास तो दे दी है हमने
तुम्हारी बाँसुरी के बांकपन को !
और धनुष शंख चक्र को दे बैठे है हम
अपना सारा पौरुष तेज
अब हमारे हाथों में धनुष, शंख चक्र के बजाय
रह गया है केवल ढोल मंजीरा और आरती का थाल
और रह गया है
भूचाली भाल पर चंदन का शीतल टीका मनमोहक
और रह गई है इन आँखों में
सिर्फ एक अनवरत प्रतीक्षा
तुम्हारे पुनर्अवतरण की
अथवा तुम्हारे सम्पूर्ण अनावरण की ।

आकाश छूने के लिए

तुम्हारी अबोध, भोली
प्रशंसा मुझे मेरे
बौनेपन से बांधे है !
मैं भी छू सकता था
आकाश को, अपनी शक्ति पर
था भरोसा मुझे इतना ।
पर तुम्हारी मुग्धा
प्रशंसा मेरे आड़े आती है ।
और मैं
तुम्हारी डोर से बंधा
तुम्हारे लिए, पता नहीं कब से
तितली के पंख, इन्द्रधनुष के रंग
जुटाता रहा हूं
और स्वयं के लिए बसाता रहा हूं
अव्यक्त वेदना के वंदनवारों से सजा हुआ
छटपटाहट का एक जीवित संसार ।
और रहा हूँ तड़फड़ाता दिन रात
पंख कटे पांखी-सा
उड़ान भरने के लिए तौलते
अपने पंखों को निरन्तर, चुपचाप ।
बावले प्रशंसक,
तुम्हें क्या पता
मुझे अपनी शक्ति का लगातार बिखराव
अब कितना महसूस होने लगा है
और तुम्हारी प्रशंसा

अब मुझे भीतर ही भीतर डराने लगी है
उत्साहित या उल्लसित करने के बजाय।
तुम्हीं तोड़ सकते हो
अपने ही बौनेपन पर फिदा मेरे भ्रम को, वहम को
तुम्हीं तोड़ सकते हो क्योंकि
तुमने ही इसे मेरे चारों ओर
मकड़ी के जाले की तरह बुना है
कि दीवार में मुझे ज़िंदा चुना है !
वक्त रहते मुझे मुक्त कर दो
प्रशंसा की अमरबेल से बांधे मुझे
मेरे भोले अल्हड़ !
नहीं तो एक दिन मैं लादा-सा
निढाल पाया जाऊँगा
शायद उस दिन
मेरे ऐसे करुण अंत पर तुम्हारी
आँखों में होगा अचरज-भरा
एक प्रश्नचिह्न
और होंगे कदाचित आंसू दो-चार।
पर देख नहीं पाऊँगा
तुम्हारे आंसू, बहाए गए
मेरे दर्दनाक हश्र पर
और नहीं देख पाऊँगा प्रश्नचिह्न,
मेरी नियति पर लगा हुआ
तुम्हारी मासूम आँखों से झांकता;
अतएव
तोड़ दो मेरी प्रशंसा का पुल लुभावना
ओ मेरे प्रिय, बन निर्मम
डूबने दो मुझे सागर की खौफनाक
गहराइयों में
आकाश छूने के लिए।

नहीं नहीं. . .

नही नही क्रांति तुममे नही आएगी
क्योंकि तुम बहुवचन हो
और क्रांति एक वचन है
तुमसे तो भला सांप है
जो दूध पीकर भी ज़हर नही छोड़ता
ओ क्रांति के मसीहाओ !
तुम उन स्थापित साहित्यकारो अथवा संपादको के—
कि जिनके साहित्य पर
हज़ारों आरोप पत्र तुमने
परिवार नियोजन के विज्ञापन की तरह
प्रचारित किए हैं—
कि जिनके साहित्य पर तुमने
नई पीढी को गुमराह करने का अपराध मढा है
कि जिनके साहित्य से तुम्हारी आत्मा
कराह उठती है
ऐसे ही किसी साहित्यकार या सपादक की केबिन में
तुम हर रोज़ आहिस्ते से चोर पांव घुस जाते हो
उनके साथ चाय कम, मुस्कानें अधिक पीते हो
सिगरेट कम विद्रोह के
हलफनामे अधिक सुलगाते हो
बिस्कुटों के अभाव को
कहकहों के स्वाद से पूरा कर लेते हो
और चायवादी बन वहां से लौटकर
कथ्य के परिदृश्य, शिल्प के बदलते आयाम
करवट लेते दर्शन के तेवर के नाम पर
युवा पीढ़ी को देते हो शिखंडी शिक्षा-दीक्षा
पर, नई पीढी का युवा कवि
समझता है तुम्हें क्रांति का अग्रदूत
चलता है तुम्हारे पीछे अपनी धारदार

कविता लेकर
पाते हो तुम उसे बेहद पैनी और खतरनाक
फिर डर जाते हो भीतर ही भीतर
कि कहीं प्रकट न हो जाए उस पर तुम्हारी
रचनाओं का खोखलापन।
साहित्यिक समारोहों, अभिनदन ग्रंथों के
प्राणायाम तथा द्राविडयाम से, पाए गए
महान युगांतरकारी साहित्यिक होने के पुरस्कार
स्वरूप सोने के तमगे को
युवा निष्ठावान रचनाकार, कहीं
निरा पीतल का टुकड़ा करार न कर दे
इसलिए तुम झट छीन लेते हो उसके हाथों से अग्निध्वज
खुद बन जाते हो झंडाबरदार
और पकड़ा देते हो उसके हाथों में
बम की जगह पटाखे फुलझड़ी और
कभी कभी उसकी लावामयी रचना को
स्याही के चन्दन से शीतल कर देते हो।

बस फिर फँस जाता है अभिमन्यु चक्रव्यूह में
अपनी ही छाया को समझ द्रोण या दुर्योधन
करता है आहत अपने को बार-बार
अपने ही प्रहार से और कहकहा लगाता है।
होता देख अपने तेजस्वी मेधावी शिष्य को
भ्रमित, कुण्ठित, दिशाहीन
तुम मूछों में मुस्कुराते हो, उसे थपकियां देते हो
और फिर, बैठ कर किसी काफी हाउस मे
क्रांति के नाम पर नया घोषणा पत्र तैयार करते हो
देकर गुस्ताख हवाले अथवा टाँक कर ओछे
आवारा उद्धरणों की बेलबूटेदार झालर दिलफरेब।
पर अब बहका नहीं सकोगे तुम एकलव्य या अर्जुन को
ओ क्रांति के स्वयंभू मसीहाओ,
द्रोणाचार्य बन या बनकर श्रीकृष्ण– सा बहुरूपिया
क्योंकि एकलव्य को अब
बायें अगूठे से भी शर संधान करना आ गया है।
और अर्जुन भी
लड़ सकता है अब
पूरा महाभारत बिना गीतोपदेश के !

हँसी

हम सबके चेहरे पर
मुलम्मा है झूठ का
संवार कर हंसते है
डरते हैं कहीं
मुलम्मा न छूट जाए ।

राष्ट्रीय पशु

पहले था शेर
अब बाघ
राष्ट्रीय पशु बना
इस बात से गधा है तना
सोच रहा है संसद में
मेरी क्लिअर मेजोरिटी है
देश की सभी विधान सभाओं में
मेरी फुल आइडेंटिटी है
फिर क्यों हूँ मैं अब तक अपमानित
पता नही
कब तक बन पाऊंगा मैं
राष्ट्रीय पशु सम्मानित !

बावजूद इसके

अब हम नही रहे संभावना-पुरुष
न कर सके हासिल
कोई लैण्ड मार्क उपलब्धि
न दे सके कोई महान रचना
संसार जिसकी हमसे उम्मीद करता रहा।
और हम खुद भी रहे सदा जिसकी
तत्पर प्रतीक्षा में।
रोज़ रोज सोचते रहे--
लिखेंगे कोई मील का पत्थर सिद्ध
होने वाली रचना और रोज़ ही कल पर
सृजन टलता रहा
आज और कल और फिर कल के बीच
स्वय को छलते रहे हम।
गोष्ठियों में हम
तेज़ तर्रार होने का
खिताब पाते रहे
पत्र-पत्रिकाओं में
ऐलानी लेख और पत्र छपवाते रहे
किसी न किसी तरह
अपनी महानता लोगों से मनवाते रहे।
लिखने के नाम पर
अच्छा लिखने की करते
रहे हैं हम निरंतर ईमानदार कोशिश
पर नही लिख पाये फिर भी
इतिहास के मिजाज को बदलनेवाली कोई अप्रतिम रचना

कलम की इस बगावत का क्या कहना !
बावजूद इसके
यह क्या कम है कि लोग
देते नहीं हैं गालियां मुंह पर या पीछे।
करते नहीं है घोषित
हमारी रचनाओं को निहायत रद्दी या कूड़े का ढेर।
हमारे अग्रज हमसे निराश हैं पर नाराज़ नहीं
और अनुज हमें
अवज्ञा या अवहेलना से नही निहारते।
यह ठीक है कि हम पुजे नही हैं
पर यह क्या कम है कि हम पिटे भी नही हैं।
भाई मेरे !
इतिहास बदलना कोई आसान बात नहीं
पर इतिहास में रह जाना भी सरल नहीं होता।
वैसे इतिहास बहुत बडा मसखरा है.
और हथेली पर सरसों उगाना
महज एक मुहावरा है !

गोष्ठी

कल रहे डटे चार घण्टे
चर्चा रह गई अधूरी, देख
अखबार में छपा नाम आज
मुस्काए यों कि हो गई पूरी।

अस्तित्ववादी

मेरे अस्तित्व की
साक्षियां है दो ही–
छप जाऊं गर मसीहा,
रह जाऊं तो विद्रोही।

बंगला देश : दो मनःस्थितियाँ

एक

मैंने कलम तोड़ दी है
बंदूक की नली साफ कर रहा हूँ।
भाग आया हूँ नफरत से बुझा बुझा-सा
प्रस्तावों और सहानुभूतियों के बौने प्रदर्शनों से
नपुंसकों की कतारों के खोखले संवादों से।
मन भर आया है क्रान्ति के तथाकथित पैगंबरों से
इंसानियत के रहनुमाओं की हैरतअंगेज खामोशियों से
जिन्हें भूगोल और इतिहास ज्यादा दिलचस्प लगते हैं
बेहिसाब मौतों के गणित के बजाय।

दो

अब मुझे फूलों में रंग नहीं दिखायी देता
दीखता है केवल
लहू के कीच में खिलता आजादी का कमल।
सरिता में सरगम के बजाय सुनायी देता है संगीनों का
चीत्कारमय संगीत।
देखता हूँ जैनब ने नहीं लगाई है मेंहदी
लगाया है रक्तफूल अपनी बगिया में इस साल।
और यूसुफ झूम रहा है मशीनगन की लय पर
राकेटों से विध्वस्त करता हुआ, बारूद के फर्श पर।
किसान और मजदूर, मालिक और नौकर
विद्वान और गंवार, सभी हैं पहरेदार।
सभी ने समझा है मतलब स्वराज का
मुजीब की आवाज का।
इसीलिए झेल रहे हैं हँसते हुए छाती पर
टैंकों का जुलूस, नापाम बमों का कायर प्रहार।
जानते हैं वे इसे अच्छी तरह कि— स्वतंत्रता की पताका
अपने ही रक्त में डूबकर रंग लाती है
लाखों कुर्बानियों के कलश पर लहराती है!

काठ का योद्धा

निष्ठा भी माँगती है पुरस्कार गुरुदेव
निष्ठा भी माँगती है पुरस्कार
शिष्य नहीं होता कोई वारदान का टुकड़ा कि
पोंछा जहाँ तहाँ, मींचा निचोड़ा और
फेंक दिया सूखने कहीं किसी बबूल की डाल पर।
वह भी चाहता है कोई नाजुक टहनी
जिसे पकड़ कर जी सके वह भी
किसी रम्य लोक में, जीवन के शुभ्रतर आलोक में।
गुरुदेव तुमने ही सिखाया था कि
प्रतिभावान को नही होती है ज़िन्दगी में
कही कोई उलझन
कि होता है वह बड़ा सामर्थ्यवान।
पर आज लगता है किसी व्यासपीठ पर
बैठ कर कहा गया वह केवल एक आदर्श वचन भर था।
अनुभव बतलाता है कि
प्रतिभा और जूते का
बड़ा गहरा सम्बन्ध है
प्रतिभावान को खाना पड़ता है जूता हर जगह
और जो मार सकता है जूता भिगो भिगो कर
वह मिनिटों में प्रतिभाशाली हो जाता है
दिन दहाड़े पण्डितों की जमात में पुज जाता है।
तुम थे जबान के मीठे और तेज़ तर्रार
हमें क्या पता था कि चुपके-चुपके
करते रहे तुम हम पर ही प्रहार।
लोग हँसते रहे हमारी नादानी पर

पर हम थे कि करते रहे तुम्हारा ही जय जयकार ।
थे इतने नासमझ कि देख पाए ही नहीं कि
तुम्हारे हाथ में थी केवल काठ की तलवार
समझते रहे जिसे हम दुश्मनों के लिए काल कराल
पर जब घाव रिसा भीतर ही भीतर करकता
तब ही पहचाना यह—दुश्मन के सामने
तो बन जाते हो तुम काठ का योद्धा
पर मिलते ही मौका
आत्मीय के पेट में घुसेड़ देते हो बघनखा !
पर संभलो अब तुम
वक्त के बदलते मिजाज को पहचानो
एकलव्य तो बदल गया समय के साथ
पर हाय गुरु
तुम द्रोण ही रह गए !

कायाकल्प

यह मुझको क्या हो गया है
कान जैसा सुनते हैं, वैसा नहीं सुन रहे
आंखें जैसा देखती हैं, वैसा नहीं देख रहीं
जीभ को जो बोलना चाहिए नहीं बोल रही
हाथ जहां उठना चाहिए वहां गिरा हुआ है
जहां गिरा होना चाहिए वहां उठा हुआ है
पांवों को जहां बढ़ना चाहिए वहां नहीं बढ़ रहे
जहां नहीं जाना चाहिए वहां दौड़ रहे हैं
आखिर, यह मुझको क्या हो गया है
युग का मसीहा,
सुविधा के सलीब पर सो गया है ।

किस्सा है तुम्हारे याद आने का

आज सड़क पर चलते चलते
जवान, सहसा तुम्हारी याद आ गई।
वैसे युद्ध के समय हम तुम्हें
जरुरत से ज्यादा याद करते हैं
और लड़ाई के बाद
अकसर हुआ ऐसा है कि तुम्हें
भुलाने में हमने कभी देर नहीं लगाई।
युद्ध के समय तुम हमारे अस्थायी हीरो हो जाते हो
वैसे होता है हमारा स्थायी हीरो
कोई राजनैतिक नेता अथवा कोई चॉकलेटी अभिनेता।
सो किस्सा है तुम्हारे याद आने का।
देखा मैंने चौपाटी के स्टॉल पर लिखा 'जय जवान स्टॉल'
पर नहीं थी वहाँ अंकित तुम्हारे शौर्य की कोई गाथा
अथवा कोई पुस्तक तुम पर अथवा तुम्हारी कोई दीगर निशानी
बिक रही थी वहाँ पर पान बीड़ी, सिगरेट और और चीजें लासानी
वहीं पास में लगा था एक पोस्टर—
पीजिए 'जय जवान' सिगरेट स्वाद में सर्वश्रेष्ठ-सर्वोत्तम
अजूबे की बात है सिपाही!
इन्हें तुम्हारे स्वाद की श्रेष्ठता का ज्ञान कैसे हो गया?
तम्बाखू और कागज में लपेटकर नशा बाँटनेवाले इन लोगों को
तुम्हारी बारूदी हँसी, आग के फूलों का खेल, मौत के मजाक
की अँधी घाटी का, चीत्कार करते सन्नाटे का स्वाद कैसे रास
आ गया?
बहरहाल कितना सस्ता है तुम्हारे शौर्य का स्वाद
छह पैसे में दो सिगरेट लज्जत से भरपूर

कितना निर्वीय है हमारे आस्वादन का धरातल !
सो किस्सा है तुम्हारे याद आने का
मैंने देखा आज तुम्हें बनिये की दूकान पर
करते हुए सैल्यूट, बेचते हुए तेल का डिब्बा
याद आई मुझे कहावत– पढ़े फ़ारसी बेंचे तेल
पर अब लगता है गढ़ना पड़ेगा मुझे मुहावरा नया–
बने सिपाही बेचे तेल ।
सो किस्सा है तुम्हारे याद आने का ।
आज शाम देखा मैंने
मंच पर लोगों को तुम्हें सराहते हुए
कि तुम्हारी विधवा को विज्ञापन का
कारगर नमूना बनाते हुए
आंका गया तुम्हारी शहादत का मोल
फेंका गया एक प्रशस्ति भरा ताम्र पत्र,
कुछ नकद रुपये, सिलाई की मशीन और एक अदद कैंची
मैंने देखा है उस मशीन से अवान सीती हुई तेरी विधवा को
कि देखा है उसे
कैंची से काटते हुए अपने बच्चों के पेट को चुपचाप ।
हाँ सो, किस्सा है आज तुम्हारे याद आने का
और याद आते हैं तुम्हारी शहादत की कीमत
को अपनी ज़िन्दगी के कतरे-कतरे से चुकाते हुए लोग।
दुश्मन भी नहीं करता तुम्हारे साथ ऐसा भौंडा मजाक
पर हमको यह हक हासिल है, आखिर तो हम घरवाले ठहरे !!
पर मेरे दोस्त तुम उदास मत होना, हताश मत होना,
मेरे भीष्म, राजनीति के शिखंडी के हाथों तुम्हें
सदा से शर शैया पर सोना ही बदा है
पर यह क्या !
मेरी कलम में स्याही की जगह
यह ख़ून कैसा लगा है !

चुनाव का स्वागत

लो, अब फिर मेरी ग़रीबी हटाई जाएगी
फिर मेरे बेकार इंजीनियर बेटे को
नौकरी दिलवाई जाएगी।
अपने परिवार से हजारों मील दूर
पड़ा हूं बेघर
अब फिर मुझे बढ़िया मकान दिलाया जाएगा
जिसमें हवा होगी रोशनी होगी पानी होगा
ताकि अपने परिवार के साथ सुख से रह सकूं
सामाजिक प्रतिष्ठा का जीवन जी सकूं
ट्रेन में बढ़ी हुई ढेरों सुविधाएं मिलेंगी
जिससे हमारी यात्राएं सुखद हो सकेंगी
समाज से शोषण खत्म किया जाएगा
महंगाई को बढ़ने से रोका जाएगा
कहने का मतलब यही कि
वह सब कुछ मिलेगा और होगा
जो मिलना चाहिए याकि होना चाहिए
पर, यह सब हो या न हो
मैं इसी में खुश हूं कि
भले ही कुछ ही दिनों के लिए क्यों न हो
मेरे दुर्बल मध्यवर्गीय कंधे का असह्य बोझ फिलहाल
खुले आम, डंके की चोट
कई दूसरे लोग उठाने के लिए लालायित दिख रहे हैं
और बस हम इसी राहत के नाम पर
आने वाले चुनाव का तहेदिल से स्वागत कर रहे हैं।

चंद टूटे शेर

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
क्या करें हिन्दी के टीचर ठहरे !

ये माना कि तग़ाफुल न करोगे लेकिन
भूखे मर जाएंगे हम, तुमको ख़बर होने तक ।

इक वक्त जिन्दगी में बुरा होता है
लड़का जब ग्रेजुएट होता है ।

चलो अच्छा हुआ काम आ गई दीवानगी अपनी
वगरना हम कतारों में उमर कैसे बिता पाते ।

पहले इसमें इक अदा थी नाज़ था अंदाज़ था
रूठना अब तो तेरे भाषण में शामिल हो गया ।

एक दुमदार कवित

न तो बड़ा होता है कोई साहित्यकार
और नहीं होता है बड़ा कोई पुरस्कार
बड़ी तो होती है उसके पीछे लगी कार
ऐसा बतलाते हैं अनुभवी जानकार ।

अवांतर कथा

मेरे आदर्शों को तुमने
महज असफलताओं का
एक ग्लोरिफाइड संस्करण बतलाया है
इन आदर्शों से आखिर जिंदगी में क्या पाया है ?
सिर्फ आंसू, परेशानी, लाचारी, झंझटें तमाम
और तुमने सफलताओं के नाम पर
छोड़ दिया है आदर्शों को
जैसे सांप छोड़ देता है केंचुल को ।
यह सच है
तुम्हें मिली है समृद्धि अपार
कर जुगाड़ ।
सुविधाओं का जहाज
तुम्हारे संकेत की प्रतीक्षा में
लंगर डाले पड़ा है
सुखों का दलाल तुम्हारे दरवाजे
हाथ जोड़ कर खड़ा है ।
ऐ जरखरीद गुलाम, रूहफरोश
कब तक ढंकोगे तुम रेशमी पर्दों से
अपनी भीतरी बेचैनी ?
करोगे शांत कब तक
छटपटाहट की नागिन को
जो बैठी है कुण्डली मार
तुम्हें लीलने को तैयार
डंस डंस कर जिसने कर दिया है
तुम्हें बेहाल

और छिपाओगे कब तक तुम
अपनी आत्मा के कोढ़ को
कर इत्र का छिड़काव
करोगे स्वीकार कैसे तुम
इस कडुवे सच को कि मेरे
आंसू का हर कतरा तुम्हारे खरीदे गए
सारे सुखों से बहुत बड़ा है
वह मेरा कितना सगा है !
तुम क्या जानो
उस दवंग ने मुझे निरंतर कितना मथा है !
किरचों पर चला है परन्तु
किसी दाम पर बाजार में आज तक
नहीं बिका है !
वैसे बात है यह बहुत सीधी सादी
पर मानोगे क्यों भला तुम इसे
आखिर ठहरे यथार्थवादी !
मेरे लिए चाहे यह
यक्ष प्रश्न हो पर
तुम्हारे लिए भला यह
एक अवान्तर कथा से
ज्यादा, क्या मूल्य रखता है ?

डमी

अभिनेता रोता है नेता रोता है
अभिनेता हँसता है नेता हँसता है
अभिनेता देता है साहस, संकल्प को
संवादी मिसाल
नेता करता है भाषणों में कमाल ।
पर जहां खतरे का दृश्य फिल्माना होता है
अभिनेता की जगह
खड़ा होता है उसका 'डमी'
आग से गुज़रता है, पहाड़ से कूदता है
ट्रेन से छलांग मार
अभिनेता को दाद दिलवाता है ।
जब आता है देश पर संकट
नेता की जगह खड़ी होती है जनता,
भोगती है अकाल की भयंकरता
सहती है बाढ़ की विनाश लीला
युद्ध के परिणामों का खतरनाक सिलसिला
और नेता ऐसे में दूर खड़ा केवल
सूखी सहानुभूति जताता है
सूखे में खड़ा डूबे को बतियाता है ।
नेता अभिनेता है
और जनता उसकी 'डमी' है
कहिए
इस उपमा में क्या कोई कमी है ?

स्वाभिमान की घास

तुम दहाड़ सकते हो
चिघाड़ सकते हो, गुर्रा सकते हो
तुम चक्रवर्ती हो।
पर मैं तुम्हारा विलोम
तुम्हारा निकटवर्ती हूं।
मैं बिना मिमियाये
घिघियाये या गिड़गिड़ाये
अपने को कहीं अभिव्यक्त
तक नही कर पाता।
तुम्हारे पास है बैसाखिया अनेक
जिन पर तुम्हारा स्वाभिमान
लड़खड़ाने पर भी टिका रहता है
संतुलन में सधा हुआ।
एक तरफ अगर तुम दहाड़ते हो
चिघाड़ते या गुर्राते हो
और छोड़ देते हो
स्वार्थ की कोई सुनहली सरहद
तब भी जानते हो तुम यह
अच्छी तरह कि
दूसरी तरफ तुम्हारी खुराक तुम्हें
तैयार मिल जाएगी
तुम्हारे त्याग की मजे मे क्षतिपूर्ति हो जाएगी।
पर मैं क्या करूं तुम्हारा
विपरीतधर्मी।
मैं इस तरफ भी घिघियाता गिड़गिड़ाता हूं

और उस तरफ भी मिमियाता हूं
मेरे तो दोनों ओर हैं सुराख
ही सुराख !
अथवा सलाखें ही सलाखें !
फिर कहां से टिकेगा, कैसे जिएगा
मेरा स्वाभिमान, मेरा आहत अहम् ?
इसके नखरे मेरी
बर्दाश्त के बाहर हैं ।
लगता है या तो
मेरा शब्दकोश पूरा छपा नही है
या उसके कुछ पृष्ठ फट गए हैं
बहुत ढूंढने पर भी मुझे
न तो स्वाभिमान शब्द मिला और
न अहम् ही ।
और तो और तमाम कोशिशों के बावजद
नहीं मिल पाई मुझे कोई
मामूली सी बैसाखी तक !
ले देकर मिले हैं सिर्फ सुराख और सलाखें
बताओ, तुमसे हम अपनी औकात क्या आंके!
तुममें और मुझमें बस इतना ही
अंतर है मेरे समीपवर्ती ।
इसलिए तुम खुर्राट बन सकते हो
खुर्राटा लेकर सो सकते हो, पर
मुझे तो रोज़ मोम का
मसीहा बन कर गलना पड़ेगा
स्वाभिमान के सलीब पर
चढ़ना पड़ेगा ।
जिनके पास दूसरे साधनों की

बैसाखियां होती है याकि होता है
कोई और जरिया
वे ही स्वाभिमान और अभिमान का
राज रोग पालते है
त्याग के अभिनय आभूषण पहनते है
पर हमारे जैसे बैसाखीहीन
व्यवस्था के वैशाखनंदन
रोज़ रोज़ अपने स्वाभिमान की
घास चरते हैं–
दुलत्ती झाड़ने के बजाय सिर्फ रेकते है ।

शीघ्रता करो

पहन कर तैयार हो जाओ
टंगे हैं दीवार पर
तरह-तरह के मुखौटे तरतीबवार
पहन इन्हें तुम
बन सकते हो
राजा, वजीर, प्यादा
अथवा चिड़ी का गुलाम, जो
करे झुक-झुक सबको सलाम !
पड़े हैं वहीं टेबल पर
तरह-तरह के पहनावे
एक से एक लाजवाब
रंग-विरंगे चटकीले आबदार
तुम पहन सकते हो
कोई भी वस्त्र
तुम्हें आज़ादी है चुनने की
पूरी-पूरी
यह तुम्हारी अपनी इच्छा पर
निर्भर करता है कि
तुम्हें क्या पहनना है
कि किसमें तुम
फब सकते हो, याकि
कौन-सा पहनावा तुम्हें रास
आयेगा ?
वहीं रखे हैं पास में ढेर
सारे रंग-रोगन

कर इनका इस्तेमाल
तुम रख सकते हो,
अपना हर मुकाम गोपन ।
शीघ्रता करो, आखिरी घंटी
बजनेवाली है
जल्द निर्णय करो,
यह तुम्हें ही तय करना है
कि तुम्हे ही तय करना है
कि तुम्हें कौन-सी भूमिका
निभाना है ?
याद रखो, तुम्हें ही
नेपथ्य और मंच के अंतराल को
मिटाना है ।
बस सिर्फ इसलिए तुम्हें केवल
विदूषक बनने की
आज़ादी नहीं है ।

इतना तो करो

प्रभु, तुम सबकी सुनते हो
मेरी भी एक बात सुन लो ।
तुमने किस अपराध का लिया है
बदला मुझसे कि–
भेजा है मुझे पता नहीं कैसे देश में
जहां गाय की पूजा तो होती है
पर हम बच्चों को पीने के लिए दूध नही मिलता ।

पूड़ी खीर मिठाई का कार्यक्रम यहां
हर बार की तरह अगले त्यौहार के लिए टल रहा है
सुना है राशन की दूकान पर
गेहूं-चावल के नाम पर कुछ मिल रहा है
न खत्म होनेवाली भीड़ में मैं बेहाल हो गया हूं
कतार मे खड़ा खड़ा दो साल बड़ा हो गया हूं !

इतना होने पर भी भगवान
हर महीने मैं कुछ बचत कर रहा हूं
कुछ न कुछ अपनी गोलक में
जमा कर रहा हूं
पर महीने के आखिर आखिर में मेरी
गोलक खाली पाई जाती है
पूछने पर–
माता-पिता का चेहरा उतर जाता है
तब मुझे, अपनी गोलक के छोटी होने का
बड़ा दुःख होता है !

हो सके तो प्रभु किसी दिन
अपना कल्पवृक्ष यहां भिजवा दो।
अथवा अल्लादीन के जिन्न को मेरे
चिराग में बंद करवा दो।
अथवा मुझे भी अलीबाबा जैसा कोई
मंत्र सिखला दो।
शेखचिल्ली बनते बनते अब मैं थक गया हूं!

अगर यह कुछ भी न कर सको, तो कम से कम
इतना तो करो कि—
मेरे भीतर अकाल घर कर गये इस
बुढ़ापे से मेरा छुटकारा करवा दो
और जवान तो शायद इस मुल्क में मैं कभी हो न पाऊंगा,
हो सके तो मेरा अबोध बचपन ही
मुझे वापिस लौटा दो।

'एकेडेमिक' रोमांस

'गाइड' है
दिलफ़रेब प्रिया
और 'रिसर्च स्कॉलर' है
उसका जी हुजूरिया पिया
बेचारा 'रिसर्च स्कॉलर'
अपने अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम
अपने शोध प्रबंध के किसी अध्याय में
उतारता है और ले जाता है
'गाइड' के करीब
पर हाय रे नसीब !
जैसे लौटा देती है प्रिया
सारे प्रेमोपहार
होकर नाराज़
बतर्ज़ सूफियाना अंदाज़ !
वैसे ही 'गाइड' सरताज
'स्कॉलर' के आत्म दान को
करता नहीं है स्वीकार
लौटा देता है उसे
'चेप्टर' पूरा का पूरा
फिर से लिखने के लिए
जैसे लौट आए जीव
संसार में भटकने के लिए !

लेक्चर के बा

हां, छोड़ आया हूं कक्षा में
एक लम्बा इतिहास शताब्दियों को
डग की तरह नापता हुआ।
छोड़ आया हूं
क्रांति की एक उफनाती नदी
जिसे मेरे खून ने प्रति पल महसूस किया था।

वियोग की विदग्ध धीमी गीली आंच
मन के मानसरोवर को रेतीला करती हुई
मिलन की मुग्धता में बौरायी आम्र मंजरी
कूकती कोयल, महकती वेणी, चूड़ियों का
अस्फुट रव छोड़ आया हूं।
आकाश की बंकिम हंसी, पर्वतों के बीच
बहती दूधिया बांसुरी, भुतहे खण्डहर
तिलस्म जगाते रेगिस्तान, सब छोड़ आया हूं।

हां, छोड़ आया हूं आत्मा परमात्मा के सनातन संवाद
अस्ति नास्ति के चिरंतन प्रवाद, विइंग और
'नथिंगनेस' का अबूझा सवाल।
जाने क्या क्या छोड़ आया हूं
और रह गया हूं अब मैं अपनी नियति में
एक कबन्ध-सा,
टूटे हुए छन्द-सा!

क्रांति का कबूतर

मैं जानता हूं कि
जो कुछ लिखा गया है मुझसे
आज तक, उसका और मेरा
कोई बहुत गहरा अंदरूनी संबंध नहीं है।

हमारा सारा विद्रोह, बगावत, क्रांतिया आज
कुर्सी के फ्रिज में ठण्डा रही हैं
व्यवस्था के खिलाफ हम चीखते रहे, चिल्लाते रहे
इसका खयाल रखते हुए कि
यहीं अपनी नौकरी पर किसी तरह
की आंच न आने पाए
और फेंकते रहे हैं पत्थर
पड़ोसी की इमारत पर
घोषित कर उसे गद्दार बेईमान।

हम बरसाते रहे हैं गालियां पुरानी पीढ़ी पर
बन गई है जो सुविधाजीवी अथवा
सत्तासेवी, पर जब भी मिला है अवसर हमें
हमने भी वही किया है
जिनके लिए पुरानों को हम
बदनामी की बारूद से
सेंकते रहे हैं लगातार उनके बदहवास हो जाने तक
बिना किसी शर्म और लिहाज के।
मिलते ही आकाशवाणी का निमंत्रण
हम अपना सारा विद्रोह, सारी क्रांतिधर्मिता

सिगरेट की तरह बुझा आए हैं और दे आए हैं
भाषण वस्त्र पहनने की विधि पर
अथवा काट आए हैं निर्ममता से
कविता के वे अंग
जिनके अभाव में कविता का अर्थ मर जाता है !

कल तक हमने भरपूर गालियां दी थीं
व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं पर
और निकाली थी नई शुद्ध साहित्यिक पत्रिका
करने प्रस्तुत प्रतिपक्ष उनका।
पर आज हम भी छाप रहे हैं उसमें
सेठ बिचौलियाराम का परिचय
या किसी स्वप्नसुन्दरी की रिझावनहार तस्वीर
जहे किस्मत क्रांतिवीर।

जिनके साहित्य के खिलाफ
लिखते रहे है
चाहते हैं उन्ही से प्रशंसा के दो शब्द
वाह री हमारी क्रांति की ध्वजा !
हमारा सारा विद्रोही लेखन
प्रशंसा के पुल पर टिकता है
विद्रोह हमको कितना छलता है !

हम अपनी लिखी दो कविताओं की
संपत्ति को मानते रहे युगांतरकारी
और दूसरों की रचनाओं को हेय,
कचरे का ढेर
क्रांति का फेर !

हम करते रहे हैं भर्त्सना
प्राध्यापकीय आलोचना की अक्सर
पर करते रहे हैं कोशिश निरंतर
पाठ्यक्रम में लगने के लिए
तहेदिल से ललचाते रहे हैं
कमल के नाम पर धंसते रहे हैं कीचड़ में
जैसे कोई डाकू आत्मसमर्पण कर दे बीहड़ में।

स्थापित होने के पूर्व
हमारे तेवर कितने सजीले थे
और आज वह कितने पनीले हैं !
सत्ता से विद्रोह
और
सत्ता को समर्पण
इन दो विराटों के बीच
फंसा मैं
क्रांति का कबूतर
सिर्फ
गुटरूं गूं गुटरूं गू बोलता हूं।

सिगरेट की तरह बुझा आए हैं और दे आए हैं
भाषण वस्त्र पहनने की विधि पर
अथवा काट आए हैं निर्ममता से
कविता के वे अंश
जिनके अभाव में कविता का अर्थ मर जाता है !

कल तक हमने भरपूर गालियां दी थीं
व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं पर
और निकाली थी नई शुद्ध साहित्यिक पत्रिका
करने प्रस्तुत प्रतिपक्ष उनका ।
पर आज हम भी छाप रहे हैं उसमें
सेठ बिचौलियाराम का परिचय
या किसी स्वप्नसुन्दरी की रिझावनहार तस्वीर
जहे किस्मत कातिबोर !

जिनके साहित्य के खिलाफ
लिखते रहे हैं
चाहते हैं उन्हीं से प्रशंसा के दो शब्द
वाह री हमारी क्रांति की ध्वजा !
हमारा सारा विद्रोही लेखन
प्रशंसा के पुल पर टिकता है
विद्रोह हमको कितना छलता है !

हम अपनी लिखी दो कविताओं की
संपत्ति को मानते रहे युगांतरकारी
और दूसरों की रचनाओं को हेय,
कचरे का ढेर
क्रांति का फेर !

हम करते रहे हैं भर्त्सना
प्राध्यापकीय आलोचना की अक्सर
पर करते रहे हैं कोशिश निरंतर
पाठ्यक्रम में लगने के लिए
तहेदिल से ललचाते रहे हैं
कमल के नाम पर धंसते रहे है कीचड़ में
जैसे कोई डाकू आत्मसमर्पण कर दे बीहड़ में।'

स्थापित होने के पूर्व
हमारे तेवर कितने सजीले थे
और आज वह कितने पनीले है !
सत्ता से विद्रोह
और
सत्ता को समर्पण
इन दो विराटों के बीच
फंसा मैं
क्रांति का कबूतर
सिर्फ
गुटरू गूं गुटरूं गू बोलता हूं।

सरेआम दुम हिलाते हुए

शेर से लड़ने भिड़ने
मरने के लिए तैयार हूं
मुझे कोई डर नहीं लगता ।
जानता हूं
शेर के हाथों मरने पर
मेरी मौत शहादत का फूल बन जाएगी ।
पर, मुझे डर लगता है
शेर की खाल ओढ़े
गीदड़ों के हुजूम से,
मुझे बहुत डर लगता है ।
ये बाहर के बजाय
अपने नाखून भीतर रखते हैं
कुर्सी की कील से चिपके
क्रांति की मौसमी बातें करते हैं
आग, आक्रोश, रोष, परिवर्तन, आंधी
संक्रांति, ये शब्द उनके होंठों पर
लिपस्टिक की तरह लगे रहते हैं ।
ये देते हैं, इतिहास का हवाला कि
क्रांति तो हमेशा नया खून ही लाया है ।
करते है विश्वास प्रकट कि
तुम्ही लोग क्रांति ला सकते हो ।
अपनी सहमी-सहमी यांत्रिक दहाड़ से
हमें उत्तेजित करते हुए कहते हैं—
"भेड़िये से मत डरो
'यंगमेन' कुछ क्रांति करो

भय के दरवाजे से बाहर आओ
आगवाले संकल्प दुहराओ।"
और कर देते हैं इंकलाबी मेमने को
भेड़िये के सम्मुख
अपने सहयोग का देकर सिंह-वचन।
पर, मैंने देखा है ऐसे गीदड़-शेरों को
चखते हुए मेरा गर्म लहू
चटखारा लेकर पीते हुए
मेरे मांस का 'ज्यूस'
और चवाते हुए
मेरी हड्डियों को बड़े स्वाद से।
भेड़िये को दाद देते हुए
उसे अनुशासनप्रिय घोषित करते हुए
क्रांति के लहू मज्जा को
बलवे का मलवा बतलाते हुए
सरेआम दुम हिलाते हुए!

दुनिया के नक्शे में बच्चो
बतलाओ तुम ऐसा देश
जिसका अपना हो न वेश
भाषाएं तो ढेरों हों पर
अगर न जानो कोई भाषा
काम बखूबी चल सकता है
अगर जानते हो तुम कोई
[६] एक 'विदेशी भाषा' थोड़ी
टूटी फूटी, उलटी सीधी
तुम्हें मिलेगा यश समाज में
पढ़े लिखों में गिनती होगी
लोग तुम्हें सिर आंखों लेंगे
देशी भाषा बतियाने का
शाप न होगा, पाप न होगा।
मुझे बताओ ऐसा देश
जिसमें ऐसा होता है
पढ़े विदेशी हंसता है
देशी पढ़ कर रोता है
मुझे बताओ ऐसा देश।
अगर बता पाए तुममें से
कोई ऐसा देश अनोखा
मानूं उसे बड़ा विद्वान
सभी एक स्वर में चिल्लायें—
'हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान'।

मैं हिन्दी के मोर्चे पर हार गया हूं

मैं हिन्दी के मोर्चे पर हार गया हूं
लड़ा हूं अपनी उम्र के तमाम साल
दिलाने हिन्दी को उसका सही स्थान ।
पर हे प्रभु, यह मुझे क्या हो गया है—
अ की जगह अब निकलने लगा है ए
पिछड़ा देख मुझको पूछता है जमाना
अब तक कहां था बे ?

कैसे बतलाऊं कि अब कहलाने में
हिन्दी का प्राध्यापक आने लगी है शरम ।
आखिर कब तक पालूं मैं
हिन्दी के राजभाषा होने का भरम ।

मेरा होनेवाला बेटा, देगा
जिन्दगी भर ईश्वर को ताना
ओ गॉड मिला था तुझे क्या मेरे लिए
केवल हिन्दी टीचर का ठिकाना !

और अब आने लगा है समझ में
लक्ष्मीनारायणलाल * का सवाल जिसे
अब तक टाला गया—

थे जिसके मामा कृष्ण और पिता पार्थ
ऐसा अभिमन्यु कैसे बेमौत मारा गया ।
हे तात अर्जुन, यदि सिखा दिया होता
गर्भ में मुझे भी अंग्रेजी का ककहरा,
सच कहता हूं—
भेद देता चक्रव्यूह आज मैं मुस्करा ।

* डॉ. लक्ष्मीनारायण की 'अभिमन्यु' कहानी का संदर्भ ।

अपने से बातचीत

कलम को फेंक दो
पकड़ ली थी तुमने
समझ इसे सुनहली बासुरी।
अरे यह तो है
विषधर फूत्कारता।
तुम्हारे हाथ में शोभता है
नाजुक दर्पण
निहारा करो उसमे अपनी छवि
दिन रात।
आत्मरति मे बड़ा कौन-सा
सुख है ससार में।
हम तो कर्म से रहे घसियारे
कभी घास पर दो क्षण बैठ
कविता लिखते थे
और अब बैठकर
घास के बजाय आपस में
एक दूसरे को छीला करते हैं।
दूसरों को चुन-चुनकर
चुभोने का हमे पूरा-पूरा
बौद्धिक हक है
शायद यह बगावत की पहली शर्त है।
पर यदि कोई हमें
चुटकी भी भरे तो
हमारा दर्पण दरक जाता है।
वैसे हमारी नैतिकता का

ईमानदारी का मानदण्ड
बस हिमालय से थोड़ा-सा ऊँचा है !
यह अलहदा बात है कि
हमें खुद अपने गुमशुदा
मेरुदण्ड का ठीक ठीक पता न हो !
इसलिए कहता हूं–
फेंक दो तलवार
अस्तबल में
और म्यान में रख लो
इत्र की एक शीशी
जब भी मौका मिले शौर्य प्रदर्शन का
या करना हो जौहर जग जाहिर
एक एक फाहा बाँट दिया करो
दोस्तों को, निकालकर म्यान से ।
और निकाल लिया करो
जेब से, सँभालकर रखी गई मूछें
ताकि सब पूछें या कि पूजें !
अपने इस अभियान के लिए
तनिक भी शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है
सभी जानते हैं इस सत्य को कि
जीने के लिए दुनिया में बहुत कुछ करना पड़ता है
कि रणबांकुरे तक को बहुरूपिया बनना पड़ता है ।

मुर्गी बैठती है, अपने अण्डे पर
क्याकरे–
नही है कुर्सी, बेचारे के पास ।

[२४]

मत छपवाओ
मेरे कटे हाथ की तस्वीर
अखबार में ।
मत करो प्रचार
मेरे कटे हुए पांव का ।
नहीं बनना है मुझे
किसी मिनिस्टर की
कुर्सी का हाथ या पांव । *

* घायल जवान का वक्तव्य

रचना के पांव

जबान से जबानों तक
कन्धे से कन्धों तक चढ़
मेरे यश का वेगवान रथ
अब हिचक कर खड़ा हो गया है।
मुझको लगता है, आज वह
मुझसे बड़ा हो गया है!
मुझे प्रतीक्षा है—
किसी कैकेयी के अवतरण की
जो रुके हुए रथ को धुरी दे दे
मेरे अवरुद्ध सृजन को
गति दे दे!
ताकि मैं रथ से बड़ा हो सकूं
किसी की जबान अथवा कन्धे पर नहीं
अपनी ही रचना के पांव पर
बेझिझक खड़ा हो सकूं।

इतिहास : नवबोध

इतिहास के रथ को रोको
वल्गाएं शिथिल कर दो ।
और कह दो
समय के अश्वों से
लौट जाएं वापिस आगत मार्ग से ।
बहुत पढ़ लिया गलत इतिहास
अब हो रहा है अहसास
व्यर्थ है देना श्रेय राम को
रावण के नाभि वध का
उसका अधिकारी है विभीषण
(सम्मान करो सच का)
क्योंकि–
राम का यशस्वी शौर्य
लक्ष्यसिद्ध बाण में नहीं
विभीषण की वाणी में बसता है !

कल सूर्योदय के साथ

आओ हम लाठियां खायें
अश्रु गैस पियें
गोलियों से मरें ।
हमारी मौत से उनमें
चिंतन जगता है जैसे
मसान में प्रेत जगता है ।
अन्यथा सोये रहते है ये
फाइलों और योजनाओं के
ताशमहल में, छोड़ते हुए
आश्वासन की पाद निरंतर ।
हमारी चिता और इनके
चिंतन में कहीं बहुत गहरा रिश्ता है !
जब तक हम मरते नही
इनके चिंतन का ऊंट ठीक-ठीक
करवट तक नही ले पाता ।
सत्याग्रह, उपवास अथवा शांतिपूर्ण
विरोध का तरीका अब शव की तरह
ठण्डा हो गया है
आज डण्डा झण्डे का कितना सगा हो गया है !
अगर कर लिए जाएँ मसले हल पहले
या दे दिए जाएँ निर्णय
किसी समस्या के उभरने के साथ
तब कैसे मिलेगी इन आदमखोरों को
हमारी लाश ।
इसीलिए लगाई जाती है देर, जगाया जाता है

कोई मारक मंत्र
कि जैसे ही मंत्र होगा पूरा
मिलेगी गोलियों को खुराक, अखबारों को
सनसनीखेज खबरें, विरोधियों को मौका सुनहरा
इन्हें चिन्ता का पाखण्ड, पर हमें–
हमें मिलेगा पोस्ट मार्टम की
बदबूदार घिनाती कोठरी का अंधेरा
और नही मिलेगी कफन तक की कोई गारंटी ।
पर तुम्ही बताओ, वे क्या करें
जिनकी तकदीर पथरा दी गई है
उनके हाथों में अगर पत्थर नही होगा
तो क्या चंदन का हार होगा
जिनके जला दिए गए है सारे सपने
उनके हाथों में अगर एसिड के बल्ब नहीं होंगे
तो क्या जुही-चमेली के महकते हुए गजरे होंगे
जिनकी जेब में योग्यता के सभी श्रेष्ठ
प्रमाणपत्रों के बगल में रख दिया गया है एक
"नो वेकेन्सी" का शर्मनाक लेटर
अगर उनके पास निकल आए कोई हैण्ड बम
या कोई धारदार चाकू
तो अचरज किस बात पर किया जाना चाहिए।
और अब वे,
घर गली मुहल्लों से निकल कर सड़कों पर चले आए हैं
अपने भूखे पेट का पीटते हुए नगाड़ा निर्ममता से
छोड़ते हुए लपटें अपनी सांसों के साथ
व्यवस्था के पर्याय विवशता को फूंक से उड़ाते हुए ।
अपनी ही चाल से पिटे हुए मुहरे, अब
निकल आए हैं सड़कों पर करने अपना फैसला ।

वातानुकूलित कक्ष, अंतःपुर या संसद भवन में
विराजमान महानुभावो,
सोच लो, अच्छी तरह सोच लो
वे कब तक तुम्हें पलंग पर लेटे हुए
या सिंहासन पर डकारते हुए सह पाएंगे ?
और इसीलिए आज हम मर रहे हैं
गोलियों की बौछारों से
कि कल शायद तुम सूर्योदय के साथ जाग जाओ
अन्यथा परिणाम भुगतने के लिए तैयार हो जाओ।
तुम्हारे हाथ में बंधी घड़ी
समय की घड़ी नहीं है।

खतरे की तख्ती

मेरे भीतर एक ज्वालामुखी है
जो बार बार फटने के लिए तड़पता है
वह लावा, वह अग्निरस मुझे
भीतर ही भीतर सेंकता है, उबालता रहता है ।
मेरे भीतर एक गंदा नाला भी है
जो उफन उफन कर
अंदर ही अंदर बह रहा है ।
लगता है मैं फट पड़ूंगा और
मेरे विस्फोट से सारी दुनिया
हिल जाएगी ।
पर, मैं सिर्फ शांत रहता हूं
कारण कि
ज्वालामुखी के ऊपर खतरे की तख्ती टंगी है
और उफनता हुआ गंदा नाला
मेरी धमनियों का खून बन गया है ।

इतिहास के अंधेरे में

गांधी तुम फिक्र मत करो
हम तुम्हें जिला देंगे।
जिंदा आदमी को एक एक क्षण जिंदा रखना
आज मुश्किल है
पर तुम तो मुर्दा हो!
तुम चाहो जबतक जी लो
एक क्षण, एक दिन, एक सप्ताह या
पूरा साल, छूट है तुम्हे पूरी-पूरी
पिरामिडों में शताब्दियों तक लाश को
जिंदा रखने का मसाला मिलता है!

बापू हम तुम्हें जिला लेंगे
भाषण कविता कहानी से किम्वदंतियो
लंतरानियों, शगूफों से।
अथवा चलाकर चर्खा, या कातकर सूत
या हरिजनोद्धार के नाम पर, कर
किसी हरिजन के साथ भोजन एकाध बार
अथवा किसी झोपड़ी को बुहार
या लगवा कर बत्ती
हम तुम्हारे नाम को चमका देंगे!

और यदि जिंदा रहने के इन
टोटकों से सतोष न हो तो कोई बात नहीं
'विविध भारती' से भी हम
करा सकते हैं तुम्हारा विज्ञापन-कि
दूरदर्शी बनने के लिए गांधी छाप चश्मा पहनें

या मिनी के इस अगले ज़माने में
उत्तम मिनी धोती के लिए
केवल एक नाम —गांधी ।
अथवा समय को कैद रखने के लिए
गाधी मार्का घड़ी पहने ।
दूसरे जूते चप्पल मचाते हैं शोर, कौआ रोर
उपद्रव अशांति ।
शाति बनाये रखने के लिए
सरेआम फेंके या पहने गांधी छाप चप्पल गेरटेंड ।
खरीदिए महात्मा छाप लुकाठी
अपने शीशमहल या दूकान की चौकस सुरक्षा के लिए ।

बापू बहुत किया है त्याग तुमने
देश के लिए ।
सह गए तीन तीन गोलियां !
अगर लगता हो तुम्हें
हमने बरती है न्यूनता
तुम्हारे मूल्यांकन में
और नही हो तुम्हें संतोष अपनी
परख के इतने पैमानों से तो
हम ढलवा कर तुम्हारे नाम का सिक्का
कर देंगे अमर हम तुम्हें इतिहास के सफों में
हमेशा हमेशा के लिए ।

और जब कोई भूकंप या प्रकृति का प्रकोप
लील जाएगा हमें
खो जाएँगे हम हजारों वर्षों के धुंधलके में
तब नई दुनिया के लोग
उत्खनन में पाएँगे तुम्हें नही, तुम्हारे आदर्श को नहीं

पर तुम्हारा सिक्का
और तब भावी इतिहासकार
कर शोध बोध उस पर, देगा वक्तव्य कि
बीसवीं शताब्दि में हिन्दुस्तान में हुआ था
एक बादशाह—नाम था गांधी सीधा-सादा
जिसे नकद कलदार की तरह समय
पड़ने पर आखिरी हदों तक केश किया गया
और मौका सध जाने पर
खोटे सिक्के की तरह फेंक दिया गया
इतिहास के अंधेरे में
छटपटाने के लिए निरंतर।

पता नहीं

पता नही क्या हो गया है
बादल गीत नही भेजते
पानी नहीं भेजते
भेजते हैं केवल एक मेघिल भ्रम।

पता नहीं क्या हो गया है
लोग बोलते बहुत हैं
काफी हाउस से लेकर मच तक
कोलाहल तो बहुत है पर कोई
बात नहीं सुनाई देती।

पता नही क्या हो गया है
देखता हूँ बादलों को, काफी को
मन होता है—
बांध दू इन्हें कविता में
मगर होता यह है कि
बादल रह जाते है
काफी के प्याले
ठण्डाते हैं
और कविता में पता नही क्यों
मैं ही मैं उतर आता हूं।

साहित्यिक मसीहा का आत्मकथन

मैं मसीहा हूं किन्तु मुझे
जुल्म की कीलें नहीं ठुकी,
फिर भी लहूलुहान हूं मैं।
ईर्ष्या और द्वेष की कीलें रोज़ रोज मुझे
छेदती है और मैं कसकता हूँ।
यह वह रक्तधारा नहीं जो
शरीर को फोड़कर बहती है,
किन्तु यह तो मेरे भीतर का ज़हर ही है जो
रिस रिस कर बह रहा है—
अनास्था, कुण्ठा, युगबोध का मुखौटा पहन-पहन
लोगों ने मुझे पत्थरों से नहीं मारा, किन्तु
मैं उस उस क्षण मरा हूँ जिस जिस क्षण
मेरे किसी दोस्त की रचना
किसी सुनाम या अनाम पत्रिका में छपी है।
मेरा जन्म मरियम के क्वांरे गर्भ से नहीं हुआ
बल्कि हर अधकचरे वाद के भ्रूण से
मैं सिरजा गया हूं।
मेरा संदेश है, अपने पड़ोसी से नहीं
उसकी रचना से प्यार करो और
इतना प्यार करो कि
उसकी रचना अपनी रचना हो जाए।
इसीलिए ओ मेरे प्रिय शिखंडी शिष्य,
मेरी हर रचना में कालिदास तथा टी. एस. ईलियट
साथ-साथ दिखाई देते हैं।
मैं अपना सलीब खुद ढोता हूं

किन्तु यह सलीब है पद्मभूषण के राजकीय सम्मान का
अथवा ज्ञानपीठ की एक लाख की थैली का।
चौराहे पर लटकना कोई यातना नहीं
विज्ञापन का नया ईजाद तरीका है!
'कुछ न होना' ही मेरा दर्शन है
इसीलिए मेरा हर शिष्य 'अपने' अलावा
सार्त्र है, मार्क्स है अथवा शोलोखोव, एगनान है
और मेरे स्वर में स्वर मिलाकर
उनके लिए प्रार्थना करता है—
जो कहीं चुपचाप लिखते हैं, बहुत कम छपते हैं
पुरस्कार के नाम पर
शाम को भूखे पेट सो जाते हैं
या किसी खैराती अस्पताल में
दम तोड़ देते हैं।
हे प्रभु, इन्हें माफ करना, ये नहीं जानते कि
चोरी कहां से और कैसे की जाती है
कि रात ही रात में आदमी में
महानता कैसे आ जाती है!

अहम की बांसुरी

कल अगस्त्य मुनि बन
पिया था महासागर को
खंड-खंड किया था उसके गर्व को।
और, आज मैं
बहाता हूँ अश्रु नित
निगले हुए सागर को
रीता मैं करता हूं
अहम की टूटी बांसुरी को
स्वरवती बताता हूं।

हड़ताल

नई कांग्रेस
पुरानी कांग्रेस
कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट
द्रमुक, संघ
सब हैं संग
हर ताल मे
हड़ताल में
जनता के नाम पे !
जनता के दाम पे ! !

संस्कारोत्सव

मै लिखा गया और फिर
काट कर सुधारा गया
किन्तु शायद
बात कुछ जंची नही, बनी नहीं
फिर मुझे, संशोधित किया गया
पर बात फिर भी जमी नही ।
इसलिए मुझे, फिर काटा गया,
फिर लिखा गया, फिर लिखा गया, फिर-फिर लिखा गया
फिर काटा गया, फिर काटा गया, फिर फिर काटा गया ।
और इस सस्कारोत्सव में
कट पिट कर मैं
पूरा का पूरा ऐसा हो गया कि
कुछ ने मुझ पर एक लापरवाह् नज़र डाल
फेंक दिया कचरे की टोकरी में
समझ कोई रद्दी मजमून अनचाहा
और किन्हीं अधिक समझदारों ने
बतला कर भविष्य में समझी जा सकने वाली
महत्वपूर्ण इबारत
श्रद्धा से तह कर, संवार कर मुझे
अनपढ़ी पाण्डुलिपियों के अब तक नहीं पढे जा सके
शिलालेखों के, अचीन्हे ताम्रपत्रों के
संग्रहालय में सादर रखवा दिया
और इस तरह् फिलहाल मुझे समझने के
अपने उत्तरदायित्व से छुटकारा पा लिया ।

खण्ड–दो

खबरदार कविताएं

यानी

गेंदे के फूल का कागज

(सन १९७० की खबरों के संदर्भ में)

इन कविताओं के बारे में प्रवर्तक की हैसियत से बोलना जरूरी समझता हूँ। खबरदार कविता लिखने की मंशा काव्यांदोलनों की भीड़ में इजाफा करने की नहीं रही और न स्वयं को हिन्दी-साहित्य में स्थापित करने की ही कोई साजिश इसके पीछे रही। 'धर्मयुग' के संपादक डॉ. धर्मवीर भारती की आत्मीय प्रेरणा से हिन्दी कविता में प्रचलित भौंडे, सस्ते, छिछले एवं सतही हास्य-व्यंग्य के समानांतर सुरुचिपूर्ण स्तरीय स्वस्थ व्यंग्य कविता को प्रस्तुत करने की सदाशयता इसकी पार्श्वभूमि में है। प्रसन्नता की बात है कि डॉ. प्रभाकर माचवे से लेकर काका हाथरसी जैसे मंचसिद्ध कवियों ने इस पवित्र संकल्प को अपना सहयोग दिया है। काका हाथरसी ने तो कदाचित् इसी के अनुकरण पर 'दीवाना तेज' नामक पत्रिका में 'न्यूज रील' स्तंभ लिखना उन्हीं दिनों प्रारंभ कर दिया था। संतोष यही है कि जहाँ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने खबरदार कविता की नोटिस ली, वहीं इसे अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही लोकप्रियता मिली।

इन कविताओं ने व्यंग्य के प्रचलित बर्फ को तोड़कर कितनी अलग भूमि गोड़ी है, इसका निर्णय करना शायद जल्दबाजी होगी। इस सम्बन्ध में केवल विनम्रतापूर्वक इतना ही कहना चाहता हूँ कि हिन्दी की व्यंग्य कविता में 'खबरदार कविता' की शुरुआत विनोद गोदरे से होती है।

कीड़ा न लगने वाला गेहूं

नैनीताल (ना). गेहूं की ऐसी किस्म यहां से १५ किलोमीटर परे मुखाली के गेहूं फार्म में ईजाद की गई है। जो ऊंचे पहाड़ी प्रदेशों में बोयी जा जा सकती है तथा जिसे कीड़ा नहीं लगता।

लगा अगर गेहूं में कीड़ा
बाहर से मंगवाएंगे
घुना हुआ चारित्र्य देश का
इसे कहां से पाएंगे ?

भारत १९७४ तक उपग्रह छोड़ेगा

मदुराई, १९ मई. (पेट्रो) त्रिवेंद्रम स्थित अंतरिक्ष विज्ञान तथा तकनीक केन्द्र की इल्क्ट्रोनिक समिति के अध्यक्ष।

भाई, त्याग नहीं पाये है
हम, आज तक—
संग्रह, विग्रह, आग्रह
क्या होगा छोड़ कर
एक उपग्रह !

पेट रहित बच्चे का जन्म

(कार्यालय प्रतिनिधि द्वारा)

गुरुवार की प्रातः कोलाबा के एक सर्जिकल नर्सिंग होम में एक पेट रहित बालक का जन्म हुआ। जन्म के २८ घन्टे बाद शुक्रवार की प्रातः उसकी मृत्यु हो गई।

बेकारी की कठिन समस्या
का, हल होगा सच्चा
घर घर में यदि जन्म ले
सके, बिना पेट का बच्चा।

दवाइयों के दाम तिगुने बढ़े

(संवाददाता द्वारा)

नई दिल्ली, ७ अगस्त । यद्यपि कुछ अति आवश्य जीवन रक्षक दवाइयों की कीमतें कम हो गई हैं, फिर भी दिल्ली के दवाई विक्रेता दैनिक उपयोग की बहुत सी दवाइयां के नए मूल्य लगा रहे हैं । इसमें कुछ की कीमतें तो ५० प्रतिशत तक ज्यादा है ।

बीमार समाजवाद को
निरोग करने के लिए
ताना बाना इस तरह
गया है बुना
हो गये दवाइयां के
दाम तीन गुना !

साहित्यकार के घर चोरी

जबलपुर (निस) हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और महाकोशल कला महाविद्यालय के प्राचार्य श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के पचपेढी स्थित निवास स्थान में घुसकर चोर लगभग दो हजार रुपयों की कीमत के वस्त्र लेकर चम्पत हो गये ।

कविता नहीं चुराई,
बुद्धिमान थे चोर ।
नहीं चाहते थे होना,
पढ़ कर उनको बोर ।

मेंढक अवतार

करौली, ११ अगस्त (हि. स.) । स्थानीय राजकीय अस्पताल में एक महिला ने मेंढक की शक्ल के एक मृत बालक को जन्म देकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया है ।

टर्र······टर्र करते नेताओं से
करने को उद्धार ।
समझे थे प्रभु लिया
आपने मेंढक का अवतार ।

रेडियो पर यूनिवर्सिटी लेक्चर

(कार्यालय संवाददता द्वारा)

नई दिल्ली, २९ जून। दिल्ली विश्वविद्यालय पत्राचार पाठ्य क्रम और बी ए के प्राइवेट छात्र

खुशनसीबी आ रही सहधर्मिणी-सहकर्मियो,
छात्रों से हो गया कम हर तरह का डेंजर।
बारा बोलेंगे-करेंगे, जो हमारे मन में है—
रेडियो देहली से बोला जायेगा अब लेक्चर।

[73]

बैल मकान की छत पर नागरिक चक्कर में

आर्वी, गुरुवार। यहा से लगभग १८ किलोमीटर दूर रोहणा में चार बैलो ने एक मकान की छत पर चढकर लोगों को चक्कर में डाल दिया।

बैल चढ़ गया छत के ऊपर, क्या अचरज की बात
घोड़ा तरसे यहां घास को, गदहा पान चबात।
सीधी बात कहावे अचरज, अचरज सीधी बात
देवी लक्ष्मी पुजें एक दिन, उल्लू रोज पुजात।

कृष्ण तुम हो कूटनीतिज्ञ महान,
तुम्हारी प्रतिमा रही सदा भद्रा।
पर लगता है, बदल रहे हो तुम,
आने लगी पसन्द चीनी मुद्रा !

कृष्ण मंदिर में चीनी मुद्रा की भेंट

गुरुवायुर (केरल), २१ जून (प्रेट्र). देवसोम अधिकारियों के अनुसार यहां प्रसिद्ध कृष्ण मंदिर की हुंडियों में ५ सौ युआन के चीनी नोट भी मिले।

अखबार हमारे खिलाफ, जनता हमारे साथ !

मद्रास. ५ अक्टूबर (प्रेट्र) केन्द्रीय वित्तमंत्री श्री चव्हाण ने आज यहां कहा कि अखबार हमेशा हमारे खिलाफ रहते हैं किन्तु जनता हमारे साथ है।

अखबारों में छपता जो कुछ
वह जनता की बानी है।
लेकिन जो नेता जी कहते
उसमें दानापानी है।
दानापानी छोड़ भटकना
जनता की नादानी है !

पानी के नीचे बसेगा नगर,
अखबारों में आई है ताजा खबर।
जिंदगी से परेशान डूबेंगे अब—
खायेंगा नहीं, कोई मीठा जहर।

पानी के नीचे नगर !

जबलपुर, २६ मई (प्रेट्र) बढ़ती हुई जनसंख्या को रहने का स्थान देने तथा सहयोगी

हरित क्रांति का चक्कर

(हमारे दुर्ग कार्यालय द्वारा)

दुर्ग शुक्रवार। म. प्र. के शिक्षा मंत्री श्री भोपालराव पवार ने कल यहा प्रगतिशील कृषकों की बैठक में कहा कि वे हरित क्रांति हेतु एक वर्ष मे तीन फसलें लेने के चक्कर में नहीं पड़े।

हरित क्रांति का महादेश मे ऐसा हुआ विकास,
ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास।
खेतों में दाना नही, मत्रालय माना नहीं
फाइल में उगता रहा, गेहूं ज्वार कपास।

रोजी में लगे लोगों पर कर लगाने का सुझाव

मैसूर, २२ जुलाई (प्रेट्र). केन्द्रीय

करोगे काम यदि तुम तो तुम्हें देना पड़ेगा कर
सहन करने करों की मार को तैयार हो जाओ।
अगर तुम चाहते हो रोटियां पाना बिना मेहनत
सरल है रास्ता इसका कि बस बेकार हो जाओ।

तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी
सब पर पी-एच. डी. बलिहारी
नये विषय पर काम कराओ
कहता है युग बोध
पीते जिसका दूध भैंस पर
अब करवाओ शोध
अक्ल बड़ी या भैंस बिचारी
इस पर डी. लिट. मिले मुरारी।

भैंसों पर शोधकार्य की योजना

नई दिल्ली, ८ अक्टूबर। देश की उपेक्षित भैंसों पर शोधकार्य प्रारंभ करने का निश्चय किया गया है।

देवता की आंखें निकालने का प्रयत्न विफल

अमरावती, शनिवार। ३२ वर्षीय युवक उमाकांत उर्फ *कुमालकर ने आज सुबह* छत्रपुरी खिडकी पर के बाला जी मंदिर में प्रतिमा के पास पूजा करने के बहाने जाकर मूर्ति के चांदी के नेत्र निकालने का प्रयत्न किया। आसपास खड़े भक्तजनों ने उसे पकड़कर पुलिस को

आंख देव की नहीं निकालो
भक्तराज नादान।
पहले से ही कम देखे है
पगले, यह भगवान।

ब्रिटेन में वायुयानों पर 'शोर कर'

लंदन, १६ सितम्बर (एप्रे) ब्रिटेन के हवाई अड्डों का उपयोग करने वाले वायुयानों पर 'शोर कर' लगाये जाने की संभावना है।

हमारा खेलना-खाना, पहनना, घूमना, जीना,
हमारी मौत पर तक करों का स्याह साया है।
अभी तक शोर कर मन के फफोले फोड़ लेते थे,
मगर सरकार निष्ठुर ने उसी पे कर लगाया है।

छः अपंगों ने इंग्लिश चैनल पार की

सिन्धगेट, (केंट) १९ अ (प्रेट्र)। छह अपंग तैराकों के एक दल ने, जिसमें पक्षाघात (पोलियो से पीड़ित दो लड़कियों और पैर विहीन एक-४८-वर्षीय इंजीनियर भी है) कल इंग्लिश चैनल पार की।

धन्य, अपंगों ने कर ली है
इंग्लिश चैनल पार।
लिंक लैंग्वेज इंग्लिश में
पर, डूब रही सरकार।

उत्तर प्रदेश में अधिक फल उगाओ अभियान

नैनीताल, २३ सितम्बर (नार्फेन) भारत जर्मन कृषि विकास योजना के अंतर्गत राज्य का फल उपयोग निदेशालय उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में और अधिक फल पैदा करने की एक विशाल योजना शुरू करेगा।

अधिक उगा कर फल क्या होगा
बंद करो अभियान।
नित्य गिरें सरकारें ऐसा
सफल करो संधान।

खण्ड-तीन

जब वेणी में गूंथ दिए थे जीवन के सारे अध्याय

आज के युग बोध के संदर्भ में इन रूमानी कविताओं की स्थिति से मैं अपरिचित नहीं हूं। पर मन की इस मासूम उड़ान के डैने काट सकूं, इतना निर्मम मैं स्वयं को नहीं कर पाता क्योंकि हृदय के एकांत कोलाहल को गुनगुनाना मैं किसी भी और कैसे भी युग में अपराध नहीं समझता। इसी कारण मुझे इस रूमानियत से परहेज नहीं है। मेरे लिए, जीवन के अन्य पक्षों जितना ही, यह पक्ष भी आत्मीय एवं महनीय है। अपने इन निजी क्षणों को पाठकों से छुपाने या अपना आधा चेहरा दिखाने के बहुरूपियेपन को स्वीकार न कर पाने की लाचारी मेरी अपनी है।

अगला पृष्ठ

मेरा बौनापन
बैठता है ' लायब्रेरी ' में
और अपनापन
कहीं चूल्हे पर
खाना पकाता है
मेरा अजनबीपन
पुस्तकों को उदास कर जाता है
और अपनापन कहीं दूर बैठा
सीता के चरित्र को दुहराता है
मेरा दर्द ' एस्प्रो ' खाता है
बुखार में बेतहाशा बड़बड़ाता है
तब अजनबीपन
मेरी ओर हैरत से ताकता है
और आहिस्ते से
पुस्तक का अगला पृष्ठ पलट देता है ।

आज भी

आज भी जब सुनता हूँ तुम्हारा नाम अचानक
सड़क पार करते भद्रों की बातचीत के दौरान
या पढ़ता हूँ तुम्हारा नाम किसी विज्ञापन
या दुकान, मकान के साथ
चौंक कर रह जाता हूँ
यद्यपि जानता हूँ–
हम तोड़ चुके है कांच की महीन दीवार
और अपने भीतर पैठ कर जान चुके है आर-पार
केशों मे टंके गुलाब या मोगरे की मादकगंधी वेणी
या उंगली मे पहनाई गई मीनाली अंगूठी,
रास्तो, गाछों की छाव और तटों की रेत पर
जन्मे, लकीरे गए हमारे सारे सपने
अब केवल उच्छिष्ट फेन मात्र हैं।
पत्रों के सैलाब मे उभर आए सारे वादे
अब समझौते के अभाव में
आत्महत्या कर चुके है।
सिनेमा, पिकनिक याकि यूनिवर्सिटी की
हरियाली लान पर
किताबों के पढ़ने के बहाने
एक दूसरे के चेहरे को पढ़ने की हमारी
मिटलोनी चोरी
अब केवल सिनेमाई रोमांटिक दृश्य से अधिक
कुछ नहीं रही।
रेस्त्रां की काफी, इडली के झगड़े में
चम्मच का छटककर गिर जाना

दर्फ भरे ग्लासों के पानी का छलक जाना
कुर्सी की दूरी का खुद व खुद सिमट आना
और ऐसे में
शाम का घिर आना टेबल पर आहिस्ते से
हम दोनों का उठ जाना यंत्र चालित सा आहिस्ते से।
पर, ये सब अब हमारे लिए
किस्से कहानियों के सजोये
अनुभवो की पुनरावृत्ति मात्र है और
आज तो हमारे सारे पिछले स्मृति-संदर्भों
का कच्चा हाल यह है कि
कोई संदर्भ टंग गया है बस के हिचकोले मे
कोई राशन की अंतहीन कतार मे
दब गया है कोई दफ्तर की किसी फाइल के नीचे
अब रोमांटिक पत्रों को पढ़ने गुनने से
किराने वाले के हिसाब को
जोड़ना गुनना ज्यादा अच्छा लगता है
और किसी बाग की नीरवता में
भाषा विहीन चेष्टाओं तथा प्रेम की मुखर भाषा से
वेतन बढ़ने की खबर पर
वाचाल चर्चा करना अधिक महत्वपूर्ण लगता है
पर जाने क्यों इन सबके बाद भी, आज
जब सुनता हूँ तुम्हारा नाम अचानक
चौंक कर रह जाता हूँ
क्षणभर को रुकता हू
होता हूं जहाँ कही भी
मन के भीतर न पड़ जाए कोई दरार
इसलिए रेस्त्रां में बैठ काफी पीता हूं
सिगरेट सुलगाता हूं
और छेड़ देता हू कोई फिल्मी गीत–
'लागी नही छूटे राम, चाहे जियरा जाय।'

निपट अकेले

मेरे पास एक छोटा फ्लैट है
एक कमरा, एक किचन और एक बालकनी वाला।
मेरी बच्ची बालकनी में
खेलती रहती है, सड़कों को देखती रहती है
हंसती रहती है, गाती रहती है।
कभी-कभी वह पापा, पापा कहकर
मुझको पुकारती है।

मेरी पत्नी किचन की दुनिया में रहती है
कभी कुछ तलती है कभी कुछ छौंकती है
दाल भात साग रोटियां पकाती है
भोजन की खुशबू, चूड़ियों की खनक रह–
रह कर मेरे कमरे में आती है
और आती है एक कोमल व्यस्तता भरी आवाज–
'खाना लगाऊं क्या, कितनी अब देरी है।'

मैं अपने कमरे में बैठता हूं गोया
किताबों के पहाड़ो पर लेटता हूं
कभी-कभार कविताएं लिखता हूं।
और कभी पढ़ कर
जब किसी बढ़िया कहानी या कविता को
वाह-वाह करता हूं भूलकर कमरे की सीमा।
सुन कर आवाज मेरी, बिटिया बालकनी से
झांकती है, पूछती है- 'पापा क्या बोले' 'पापा क्या बोले।'
पत्नी का हाथ रुक जाता है करता हुआ काम,
बच्ची के शब्दों को दुहराती है।

मैं चुप रह जाता हूं, पर सोचने लगता हूं—
तीनों की अपनी अलग-अलग दुनिया है
कविताएं मेरी, चूड़ियों की खनक और बच्चों का
खेल, हमें परस्पर जोड़े है।
अगर कहीं होता एक और कमरा तीसरा
कितने कट जाते हम,
आवाजें तक एक दूसरे की, नहीं सुन पाते हम
हो जाते कितने अकेले हम
निपट अकेले हम।

बरसों बाद

बरसों बाद
म्यूजियम के किसी
छायादार पेड़ तले
दोनों मिले।
कुछ क्षण जिये वे यादों में
फिर
रख कर अपना अतीत
म्यूजियम के किसी कक्ष में
फिर कभी न मिलने के लिए
अलग-अलग दिशा में चल दिए।

निष्फल प्रणय

प्रिये, तुम विस्तृत घाटी हो
और मेरा प्रणय निवेदन
लौट आता है
तुम्हारे पास जा।
जैसे लौट आए ध्वनि
चट्टान से टकरा।

प्रश्न क्षण

मेरे लिए तेरा अर्थ
मेरे लिए तेरा अर्थ
केवल तेरा शरीर
गर्म गर्म मांस
उन्नत उरोजों के बीच की उष्णता।

मेरे लिए तेरा अर्थ
नरम चिकने पांव
बाँहों की कसती गोलाइयां
कटिबंध का शिथिलाचार।

मेरे लिए तेरा अर्थ
आँखों में झलकता इंतजार
वाणी में सिमटता दुलार
भूचाल से लड़ने का संकल्प
जगाता तेरा प्यार।

मेरे लिए तेरा अर्थ
मेरे लिए तेरा अर्थ
तेरे लिए मेरा अर्थ ?
तेरे लिए मेरा अर्थ ?

और आज

ओ री मानवती राधे,
उस दिन इस धनी याचक ने
तेरे सम्मुख अपना अयाचित कर फैलाया था
पर,
गर्व की किसी पापी छिनाल गध से
दोलायित तूने,
उस फैले हुए कर को
केसर लसी, चंदनी हथेली मे
हीन नगण्य समझ ठुकरा दिया था
और वह फैला हुआ कर-कुसुम
तेरे मान के ताप से असमय मे ही मुरझा गया !

वह निराला वेणुवादक, स्वर माधक
जीवन की किसी दोपहरी में
कदम्ब की घनी मादक मद चूती छैयां छोड़
तेरे द्वार पर सम्मोहित-मा चला आया था
वह मनभावन, मुरलीधर,
उस दिन तेरे अधरों मे जीवन मिलन का कोई
अपूर्व, अमन्द सरस विदग्ध राग सुनना चाहता था
पर,
मान की गैया को मन के खूँटे बाधे,
तूने नाद ब्रह्म के, आत्मा के मवसे वड़े गायक के
होंठ पर मात्र ज्वलित अगार धर दिया
मान की मदमाती गंध से वावरी वनी
तू यह भूल ही गई कि

वेणु के इन्हीं स्वरों में
तेरी गाय का रंभाना छिपा हुआ है कि
इसके एक हलके से स्वर संधान से
तेरे मान की हर गैया
खूंटा तोड़कर भाग सकती है !

उस दिन चरणों के महावर में डूबी अल्हड़ गर्विते,
तूने प्रणय के चरणों पर खड़े उस त्रिभंगीलाल को
उलटे पैरों द्वार से लौटा दिया था,
आलोक के किसी भव्य पंथ का निर्देश न कर,
तूने उस अतिथि को, याचक को
मात्र अमावसी तम की, निराशा की अंधी घाटी में
ढकेल दिया, भटका दिया ।
काश, तूने भी भटकाव की पीड़ा जानी होती !

और आज
जबकि आकुल व्याकुल कान्ह की
बांसुरी का हर स्वर टूट गया है
रास का महापर्व जैसे पथ भूल गया है
ऐसी विकट, भयंकर श्मशानी उदासीनता में
तेरी चेतना लौटी है मनुहारप्रिये,
और आज तुम स्वेच्छया,
सरिता सी सागर को समर्पण करना चाहती हो
उन पराजित तिरस्कृत करों में
प्रणय का अमूल्य, अछूता मणिकोष धरना चाहती हो ।
पर मानगता,
जीवन के पथ पर यह विस्मृत न करना—
कि जीवन में प्रणय का कमल सिर्फ एक बार खिलता है ।
कि जीवन में प्रणय का हार सिर्फ एक बार गुंथता है ।

स्मृति

कभी–कभी यों ही घंटों
मैं बैठा रह जाता हूं
निहारता रह जाता हूं
धीरे–धीरे व्याप रहे अंधकार को
आहिस्ते–आहिस्ते उतरती हुई
विषाद की प्रेत-छायाओं को।
फिर अचानक ही
ये अचेतन निष्प्राण ठंडी उंगलियां
कुरेदती हैं एक शब्द
एकाएक आखें गीली हो जाती हैं।
और फिर, मैं यों ही,
घंटों बैठा रह जाता हूं
शून्य को निहारते हुए।

पूजा

उजाला हमें फरिश्ता
बनाता है और
अंधेरा हमें
और ज्यादा आदमी
इसलिए
आओ हम
अंधकार की पूजा करें।

एक सांझ : फूल-खेल

एक सांझ ऐसी गुजारें तो कैसा हो
चले कहीं सागर किनारे वहीं बैठ रहें ।
साधे चुप्पी बरसों पुरानी, नहीं बोलें
भीतर से बाहर के सागर को तोलें ।
इतने में दीखे सूरज का डूबना
पल भर को आंखों में
हल्की लकीर कोई गीली उभर आए
देखूं न देखूं मैं, चेहरा घुमा लो तुम
पोछों चुपके से कोरों को गीली ।

एक सांझ ऐसी गुजारें तो कैसा हो
चलें एक बार फिर बगिया में बिसरी
खिंची रहे चुप्पी बरसों पुरानी,
जानी पहचानी अब ।
बैठें चुपचाप उसी गाछ तले गुमसुम से
बोलें क्या बोलें बोल कुछ फूटे न
इतने में झर कर फूल कोई ऊपर से
गिरे ठीक बीचोंबीच मांग के तुम्हारी
चमक उठें आंखों में हल्की नमी मेरे,
सिहरूं पल भर को मैं, फिर धीरे संभलूं ।
अनदेखा कर जाओ तुम भी यह फूल-खेल
मुश्किल से रोको फिर सिसकियों को फूटती ।
रह रह कर प्रश्न उठे मन में यह कौंधता—
कब तक गुजारोगे शामें तुम ऐसी ही
टूटे संदर्भों को, खोये हुए अर्थों की ।
शायद तुम्हारे भी मन में यह प्रश्न उठे !
शायद तुम्हारे भी मन में यह प्रश्न उठे ! !

कौन

कल तक बयरिया के झोंको में
नींद की खुमारी बह-बह कर आती थी
अम्मा के काम को किये बिना
बापू के हुक्के को भरे बिना
सरेशाम ऊँघ-ऊँघ जाती थी,
तनिक न लजाती थी ।

कल तक अटरिया पर, मैं केवल मैं थी
आज जाने कौन विहँस-विहँस जाता है
चँदा से करती शिकायत सलोनी तो
चँदा यों लगता कि छितर-छितर जाता है
रग बिखर जाता है, अंग निखर आता है
कौन वह अपरिचित कान्ह
धीरे से जोबन की पिचकारी मार-मार जाता है
पास नही आता है, केवल भटकाता है ।

कलतक गली से मै यों निकल जाती थी
जैसे मरुथल में चाँदनी आज़ाद है ।
लक्खू से सब्जी ली, कल्लू से इमली ली
कक्का से जुहार करी, कितनी भली गली !
बेशर्मी, अल्हड़ता से हाट घूम आती थी
तनिक न शर्माती थी ।

पर, आज कौन आया है गैल में
कान्हा-सा राधा को छेड़ने
पैर नही उठते हैं

पैर यदि उठते, तो नैन नहीं उठते हैं
जाने वो कौन आज रोक-रोक देता है
कानों में गुपचुप कुछ बोल-बोल लेता है
मन में न जाने कौन—
नारंगी-सतरंगी स्वप्नों को घोल-घोल देता है।

कल तक आँगन में, मैं दीपक धर आई थी
तुलसी को जल, बछिया को सानी दे आई थी
मंदिर में जाकर मैं पूजा कर आई थी
अम्मा को बैठकर गीता सुनाई थी।

पर आज कौन बरजोरी करता है
तुलसी के पौधे में, बछिया की सानी में
नदिया के दर्पन में चमक-चमक उठता है
मनवा के मधुवन में
रास को रचाता है
मंतर से बाँध-बाँध,
बंसी से फूंक-फूंक, तन को जगाता है
मन कसमसाता है
जियरा घबड़ाता है
और दूर छज्जे पर
कागा निगोड़ा बैठा
काँव-काँव गाता है कि
कौन-कौन गाता है ?

केवल तुम्हें

ओ मेरे चदनी प्यार,
याद है तुम्हें
कदम्ब की छांव से जमुना तट तक
बिखरा था हमारे प्रेम का पराग, स्नेह का अबीर
हवाएं सुगंध की सौगंध सी बावरी हो गई थी
तुमने बांसुरी के स्वर को, अपनी अनछुई थिरकन से
जादुई बना दिया था
उन क्षणों में तुम्हारा कंपना, थमना,
सांसों का उठना गिरना
छूटने के सारे आरोपित प्रयत्न, तुम्हारे केशों की केवड़ई गंध
कटि देश के शिथिल लोकाचार,
सिमटती हुई मर्यादा की रेखाएँ और
सृष्टि के सुलगते हुए आंदोलित स्वाद
तुम्हारी देह के चपा प्रदेश को हिलोर गए थे,
झकझोर गए थे,
तुम्हारे उच्छवास का उष्ण अमृत
तुम्हारे देह फूल की वह चमकीली शीतल
लावामयी आग
पिघला गई थी मेरे शंख और चक्र की जड़ता को ।

किन्तु फिर भी तुम्हारा वह दरस परस था कितना ऊंचा
मांसलता से कितना ऊपर
वासना के हर शिखर को बौना बनाता हुआ,
रेत पर बिखरे हुए सीप, घोंघे या
भीतर ही भीतर कटते हुए शैवाल की तरह उसे

बांस और आत्मदायी बनाता हुआ,
केवल तुम्हारा वह आदिम स्पर्श, केवल स्पर्श !

याद है मेरी प्रार्थना की ओ अबोल सध्या
क्या तुझे याद है ?
तुम्हारी हथेलियों की ऊष्मा में रुके हुए मेरे आसुंओं की
सजल आरती, क्या तुम्हें याद है ?
तुम्हारे आलक्तक से सवरे चरनों में
जीवन की हर शपथ को
समर्पित कर दिया था मैंने,
तुम्हारे चरनों में उकेरे थे मैंने साथिये
सपनों के स्पन्दित सरोवर
और वेणी में गूथ दिए थे जीवन के सारे अध्याय
सारी निर्माल्य कथाए। क्या तुम्हें याद है
ओ मेरी प्रार्थना की अबोल सध्या
जब देहों के राग के पहले ही कोई विहग
उड़ा था
, वातावरण को कोलाहल से आपूरित कर
और तुम्हारी भोली आंखों की निर्दोष आकाशी श्यामलता
नदी को कर गई थी जाम्बूली, जामुनी,
बांसुरी की उस दिन की तान
आज तक मुझे गाय के रंभाने सी याद है !

ओ संगीता,
उस दिन तुम्हारे मान की हर गगरिया को
तोड़ने के लिए
मैंने बजाई थी बांसुरी,
अपनी चिर संगिनी बांसुरी,

हम सपनों में खो जायेंगे
और
हमारे सपने भीड़ में
इसलिए
आओ हम भीड़ में
अकेले-अकेले चलने का
अभ्यास करें ।

[९४]

मैदान
दो जोड़ी चप्पलें
बाकी
सुनसान !